संपादकीय

अमेरिका का फीस वाला गेट और भारतीय सपनों पर ताला

अमेरिका में पढ़ना अब केवल पढ़ना नहीं रहा, बल्कि एक महंगा सौदा बनता जा रहा है। ट्रंप प्रशासन ने विदेशी छात्रों के लिए ऑप्शनल प्रैक्टिकल ट्रेनिंग यानी ओपीटी की फीस को करीब 40 हजार रुपये से बढ़ाकर एक लाख डॉलर तक करने के प्रस्ताव को मंजूरी दी है। खबर सुनने में यह एक प्रशासनिक फेरबदल लग सकती है, लेकिन इसका सीधा असर अमेरिका में पढ़ रहे लाखों विदेशी छात्रों, खासकर भारतीयों पर पड़ सकता है। अमेरिका में इस समय बड़ी संख्या में विदेशी छात्र हैं, जिनमें भारतीय छात्रों की हिस्सेदारी महत्वपूर्ण है। इनमें अधिकांश विज्ञान, तकनीक, इंजीनियरिंग और गणित यानी एसटीईएम क्षेत्रों से जुड़े हैं और ओपीटी उनके अमेरिकी करियर का पहला दरवाजा है।

ओपीटी को समझना जरूरी है। अमेरिका में एफ–1 वीजा पर पढ़ने वाले छात्र को पढ़ाई पूरी करने के बाद 12 महीने तक अपने विषय से संबंधित क्षेत्र में काम करने की अनुमति मिलती है। एसटीईएम छात्रों को 24 महीने का अतिरिक्त विस्तार मिलता है। यह अवधि छात्र के लिए केवल नौकरी नहीं, बल्कि आगे एच–1बी तक पहुंचने का पुल भी है। इसी पुल पर अब एक लाख डॉलर का टोल लगाने की तैयारी है। यह फीस छात्र से नहीं, नियोक्ता से वसूली जाएगी, लेकिन इसका बोझ अंततः छात्र पर ही पड़ सकता है। कोई भी अमेरिकी कंपनी एक नए विदेशी स्नातक के लिए इतनी बड़ी अतिरिक्त लागत क्यों उठाएगी, जब उसके पास घरेलू प्रतिभा का विकल्प मौजूद है?

ट्रंप प्रशासन की यह नीति उसकी पुरानी लाइन 'अमेरिकन जॉब्स फॉर अमेरिकन्स' से जुड़ी है। तर्क यह दिया जा रहा है कि ओपीटी सस्ते विदेशी श्रम का जरिया बन गया है और इससे अमेरिकी युवाओं के अवसर प्रभावित हो रहे हैं। इसलिए इसकी लागत बढ़ाकर इसे हतोत्साहित किया जाए। हालांकि प्रस्ताव को लागू करने से पहले आपत्तियां और सुझाव मांगे जाने की प्रक्रिया होगी। इसके बावजूद संदेश स्पष्ट है कि विदेशी छात्रों के लिए अमेरिका में पढ़ाई के बाद काम करने का रास्ता महंगा और अनिश्चित बनाया जा रहा है। भारतीय छात्रों पर इसका पहला असर नौकरी के अवसरों पर पड़ सकता है।

दूसरा संकट शिक्षा ऋण का है। अमेरिका जाने वाले अनेक भारतीय छात्र भारी शिक्षा ऋण लेकर पढ़ाई करते हैं और उनकी योजना ओपीटी के दौरान काम करके कर्ज चुकाने की होती है। यदि नौकरी के अवसर घटे तो इसका असर परिवारों की आर्थिक स्थिति पर भी पड़ेगा। पहले से मौजूद वीजा अनिश्चितता के बीच ऐसी नीति छात्रों का तनाव बढ़ा सकती है। अमेरिकी उच्च शिक्षा और तकनीकी क्षेत्र लंबे समय से विदेशी प्रतिभाओं से लाभान्वित होते रहे हैं। यदि अमेरिका में अवसर महंगे और कठिन होंगे तो कनाडा, ब्रिटेन, जर्मनी और ऑस्ट्रेलिया जैसे देश भारतीय छात्रों के लिए अधिक आकर्षक विकल्प बन सकते हैं। इससे वैश्विक शिक्षा बाजार का संतुलन बदल सकता है। भारत के लिए इसमें चुनौती के साथ अवसर भी है। जो विद्यार्थी वापस लौटेंगे, वे उच्च कौशल और वैश्विक अनुभव लेकर आएंगे। अमेरिका को भी समझना होगा कि विदेशी छात्र केवल नौकरी मांगने वाले नहीं हैं। वे विश्वविद्यालयों को फीस देते हैं, स्थानीय अर्थव्यवस्था में योगदान करते हैं और आगे चलकर अमेरिकी कंपनियों में प्रतिभा जोड़ते हैं। अमेरिकी सपना कभी खुली बाहों का प्रतीक था। यदि उसी सपने के गेट पर एक लाख डॉलर का ताला लगा दिया गया, तो सपने देखने वाले रास्ता बदल सकते हैं। सवाल सिर्फ इतना है कि इस बदलाव की कीमत कौन चुकाएगा— छात्र, परिवार, भारत या खुद अमेरिका?

आजकल

पेड़ पर टंगा ब्लैकबोर्ड और जमीन पर बैठा भविष्य

अशोकनगर के टोरिया चक में शिक्षा व्यवस्था का शर्मनाक सच

अशोकनगर जिले के मुंगावली विकासखंड अंतर्गत टोरिया चक प्राथमिक विद्यालय की तस्वीर देखकर कोई भी चौंक जाएगा। बरगद के पेड़ से लटका ब्लैकबोर्ड, जमीन पर बिछी दरी पर बैठे नौनिहाल और पास में बैठी भैंस—यह किसी फिल्म का दृश्य नहीं, बल्कि सरकारी शिक्षा व्यवस्था की जीवंत हकीकत है। वर्ष 2021 में स्कूल भवन की छत ढह गई थी। उसके बाद से आज तक नया भवन नहीं बना। बच्चे कभी पेड़ के नीचे, कभी किसी की दालान में और कभी टीवी के शोर के बीच पढ़ने को मजबूर हैं।

सबसे बड़ा सवाल भवन का है। सितंबर 2021 में स्कूल भवन की छत गिर गई थी। उससे एक साल पहले ही इसे डिस्मेंटल घोषित कर दिया गया था। नियम के अनुसार तुरंत वैकल्पिक व्यवस्था होनी चाहिए थी, लेकिन चार साल बीत जाने के बाद भी नया भवन नहीं बना। कागजी व्यवस्था में स्कूल को निजी भवन में संचालित दिखाया जा रहा है, लेकिन हकीकत में बच्चे पेड़ के नीचे मच्छरों के बीच बैठकर पढ़ते हैं। कागजों में किराया निकल रहा है और जमीन पर छत नहीं है। यह केवल लापरवाही नहीं, बल्कि भ्रष्टाचार की आशंका भी पैदा करता है।

इस स्कूल में नौ बच्चे दर्ज हैं। चार बच्चे बिना प्रवेश के बैठते हैं, क्योंकि उनके पास समग्र जन्म प्रमाण पत्र नहीं है। एक नियमित और एक अतिथि शिक्षक तैनात है। यानी शिक्षक पर्याप्त हैं, पर संसाधन नहीं हैं। सरकार समग्र शिक्षा की बात करती है, लेकिन समग्र आईडी के अभाव में बच्चों को प्रवेश ही नहीं मिल रहा। यह कैसी व्यवस्था है, जहां कागज के अभाव में शिक्षा का अधिकार ही छीन लिया जाए?

पीएम नरेंद्र मोदी और उनकी बड़ा सोचने की ताकत

अमिताभ कांत

मुझे लगने लगा था कि भारत का अपना पहला ग्रीन–फील्ड शहर बनाने का सपना शायद ही सच हो पाए। उस समय मैं दिल्ली–मुंबई औद्योगिक कॉरिडोर विकास कॉरपोरेशन (डीएमआईडीसी) का सीईओ था और मुझे भारत के औद्योगिक शहरीकरण के अगले चरण को आगे बढ़ाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई थी। हर मुख्यमंत्री ने हमारे प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया था कि ऐसी परियोजना के लिए 150 वर्ग किलोमीटर ज़मीन तय करना बहुत जोखिम भरा और मुश्किल काम है। फिर मैं गुजरात के मुख्यमंत्री के दफ्तर पहुँचा। श्री नरेंद्र मोदी ने मेरी बात सुनी, पाँच मिनट तक सोचा और कहा, '150 वर्ग किलोमीटर तो बहुत कम है।' उन्होंने मुझसे कहा, 'अगर सपना देखना है, तो बड़ा सपना देखो।'

सीएम मोदी ने 750 वर्ग किलोमीटर ज़मीन देने की पेशकश की और 2009 तक गुजरात सरकार ने विशेष निवेश क्षेत्र (एसआईआर) एक्ट लागू कर दिया और मास्टर प्लान के साथ धोलेरा एसआईआर की आधिकारिक घोषणा कर दी। उस पहली बातचीत से मुझे उनकी सोच के दायरे का पता चला। उनकी सोच का दायरा बहुत बड़ा था। वे ज़मीन को कोई रुकावट या किसी परियोजना को अलग काम के तौर पर नहीं देखते थे। वे गुजरात और समय के साथ पूरे भारत के लिए विकास का एक नया इंजन बनाने की संभावना देख रहे थे। वे मेरे करियर में मिले सबसे दूरदर्शी और भविष्य की सोच रखने वाले नेताओं में से एक थे और आज भी हैं।

इसके कुछ समय बाद, मैंने दो वाइब्रेंट गुजरात समिट में हिस्सा लिया और एक विकसित, गतिशील और विश्व–स्तरीय राज्य बनाने के लिए उनके ज़बरदस्त जुनून को देखा। वे चाहते थे कि गुजरात भारत का सबसे आधुनिक राज्य बने और उन्होंने बहुत साफ सोच और ऊर्जा के साथ इस लक्ष्य को पाने की कोशिश की।

2014 तक, केंद्र में नई सरकार आ गई थी और श्री मोदी मुख्यमंत्री से भारत के प्रधानमंत्री बन गए थे। उस समय औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग (डीआईपीपी) के सचिव के तौर पर, मैं उन शुरुआती अधिकारियों में से एक था, जिन्होंने उनके सामने प्रेजेंटेशन दिया था। विश्व बैंक की ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस रैंकिंग में भारत को 142वें स्थान पर देखकर वे काफी निराश हुए। उन्होंने हमसे एक ही मिशन पर ध्यान देने को कहा– भारत को अपने नागरिकों और व्यवसायों के लिए ज़्यादा आसान, सरल और बेहतर बनाना। इस तरह अलग–अलग मंत्रालयों और विभागों में कड़ी मेहनत का दौर शुरू हुआ। हमने इनसॉल्वेंसी एंड बैंकरप्सी कोड, वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) पर काम किया और पुराने नियमों, कानूनों, प्रक्रियाओं और अधिनियमों को हटाने पर भी फोकस किया। विभागों की सोच बदलना मुश्किल था, लेकिन हम डटे रहे और आखिरकार सफल हुए, क्योंकि प्रधानमंत्री ने खुद सबसे ऊपर से इस कोशिश को आगे बढ़ाया। आखिरकार, भारत रैंकिंग में 79 स्थान ऊपर आ गया। इसके कुछ ही वक्त बाद ही हमने मेक इन इंडिया पर प्रधानमंत्री के सामने कई प्रस्तुतिकरण दिए। उन्हें पूरा भरोसा था कि अगर भारत को विनिर्माण के क्षेत्र में आगे बढ़ना है, तो उसे रोज़गार पैदा करना होगा, खुशहाली लानी होगी और तेज़ी से विकास करना होगा। इसी सोच के साथ मेक इन इंडिया की शुरुआत हुई। आज, यह सोच कई क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर विनिर्माण क्षमता के रूप में फैल चुकी है—मोबाइल फोन (जिसमें भारत दुनिया में दूसरे नंबर पर है) और इलेक्ट्रॉनिक्स से लेकर ऑटोमोबाइल और ईवी, दवाएं, रक्षा उपकरण, सोलर मॉड्यूल, टेलीकॉम और इंजीनियरिंग के सामान तक।

वे युवा भारतीयों को उद्यमी बनाने के लिए भी उतने ही दृढ़ थे। जब स्टार्टअप इंडिया अभियान शुरू हुआ, तो भारत में केवल 356 मान्यता प्राप्त स्टार्टअप थे। आज यह संख्या तीन लाख से ज़्यादा हो चुकी है। लॉन्च के समय, प्रधानमंत्री ने पूरा दिन युवा उद्यमियों के साथ बातचीत करने, उनके विचार सुनने, उनकी चिंताओं को समझने और उन्हें पारंपरिक सोच की सीमाओं से परे सोचने के लिए प्रोत्साहित करने में बिताया। तब से वह लगातार स्टार्टअप्स के साथ जुड़े रहे हैं, क्योंकि वह समझते हैं कि उद्यमशीलता का अर्थ युवा भारतीयों को समस्याएं सुलझाने, जोखिम उठाने और अपनी शर्तों पर भविष्य बनाने का आत्मविश्वास देना भी है।

पीएम मोदी के लिए, संभावनाओं की कोई सीमा नहीं है। वे तकनीक की गहरी समझ रखने वाले नेताओं में से एक हैं और उनमें नई–नई तकनीक को अपनाने और उनसे जुड़ने की अद्भुत क्षमता है। नई और आधुनिक प्रौद्योगिकी में उनके भरोसे के साथ–साथ, वे ऐसी नीतियां और संस्थागत माहौल बनाने के लिए भी हमेशा तैयार रहते हैं, जिससे भारतीय उद्यमी विकास के इन नए क्षेत्रों में काम कर सकें। उनके नेतृत्व में, भारत ने एआई, क्वांटम कंप्यूटिंग, जियोस्पेशियल टेक्नोलॉजी, ड्रोन, रक्षा और अंतरिक्ष अन्वेषण के क्षेत्रों में बहुत सारे अवसर पैदा किए हैं। चंद्रयान–3 और आदित्य–एल1 जैसे भारत के स्पेस मिशन की सफलता के साथ–साथ, एक मज़बूत प्राइवेट स्पेस इकोसिस्टम भी उभरा है। इसके साथ ही, भारत का ढ्ढस्द्बद्ढ्ढ मिशन और नेशनल क्वांटम मिशन, एआई और क्वांटम टेक्नोलॉजी में देश की अपनी क्षमताएं विकसित कर रहे हैं। ये मिशन तकनीक के क्षेत्र में सबसे आगे रहने के लिए ज़रूरी अवसंरचना, अनुसंधान प्रणाली और प्रतिभाओं को तैयार कर रहे हैं। लेकिन, जहाँ पीएम तकनीक–आधारित भविष्य में विश्वास रखते हैं, वहीं वे अपनी विरासत का भी सम्मान करते हैं। नेशनल ग्रीन हाइड्रोजन मिशन जैसी पहलों के ज़रिए सतत विकास में भारत का नेतृत्व यह सुनिश्चित करता है कि भारत का विकास और तरक्की पर्यावरण को बिना नुकसान पहुंचाए हो।

बहुत से भारतीयों के लिए, यह उद्यमशीलता वाली सोच भारत में डिजिटल पेमेंट की दुनिया में तेज़ी से हुई बढ़ोतरी की वजह से ही मुमकिन हो पाई। एक दशक पहले, रोज़मर्रा के लेन–देन में कैश और भारी–भरकम कार्ड का ही बोलबाला था, डिजिटल ट्रांसफर धीमी और महंगी प्रक्रिया थे और ज़्यादातर छोटे व्यापारियों और पहली बार स्मार्टफोन इस्तेमाल करने वालों की पहुँच से बाहर थे। जो बदलाव आया, वह सोच–समझकर और पूरी व्यवस्था को साथ लेकर की गई कोशिशों का नतीजा था। प्रधानमंत्री ने कम–कैश वाली अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया, रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया ने विनियामक फ्रेमवर्क को मज़बूत किया, एनपीसीआई ने यूपीआई को डिज़ाइन करके लॉन्च किया और बैंकों, फिनटेक कंपनियों, टेलीकॉम कंपनियों और व्यापारियों ने मिलकर एक खुला और आपस में जुड़ने वाला पेमेंट सिस्टम बनाया। उन्होंने हमारी टीम को 100 दिनों में 100 डिजिटल मेले आयोजित करने की चुनौती दी। उस ज़बरदस्त कोशिश ने यूपीआई की शानदार बढ़ोतरी के लिए माहौल बनाने में मदद की। वित्त वर्ष 2016–17 में सिर्फ़ 1.78 करोड़ यूपीआई ट्रांज़ैक्शन से बढ़कर, यह सिस्टम अब साल में 24,000 करोड़ से ज़्यादा ट्रांज़ैक्शन संभालता है। यानी वॉल्यूम में 13,000 गुना से ज़्यादा और मूल्य में 4,000 गुना बढ़ोतरी। भारत ने सात साल में वह हासिल कर लिया, जिसे करने में शायद 50 साल लग जाते।

2016 तक मैं भारत के सबसे बड़े पॉलिसी थिंक टैंक, नीति आयोग का प्रमुख बन चुका था। हमारी कैबिनेट की एक बैठक के दौरान, पीएम मोदी ने मुझे अलग से बुलाया और भारत के सबसे पिछड़े ज़िलों पर काम शुरू करने के लिए कहा। वे सबसे मुश्किल समस्याओं को पहले हल करना चाहते थे और यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि पंक्ति में खड़े आखिरी व्यक्ति तक विकास पहुँचे। उस बातचीत से आकांक्षी ज़िला कार्यक्रम की शुरुआत हुई, जिसके ज़रिए मैंने रियल–टाइम डेटा, मापने लायक नतीजों और युवा अफसरों की ताकत में पीएम का गहरा भरोसा देखा। उन्हें पूरा यकीन था कि इन ज़िलों में बदलाव लाने से पूरे भारत में बदलाव आएगा। आकांक्षी शब्द का सुझाव भी उन्होंने ही दिया था, क्योंकि वह चाहते थे कि इन ज़िलों की पहचान इस बात से हो कि वे क्या बन सकते हैं, न कि इस बात से कि उनमें किन चीज़ों की कमी है।

नतीजों ने उनकी सोच को सही साबित किया। इन ज़िलों ने स्वास्थ्य, शिक्षा, खेती, वित्तीय समावेश और बुनियादी ढांचे के क्षेत्रों में अपने प्रदर्शन को बेहतर बनाना शुरू किया। कई पैमानों पर, वे देश के सबसे अच्छा प्रदर्शन करने वाले ज़िलों से भी आगे निकल गए। प्रधानमंत्री ने इस कार्यक्रम पर बारीकी से नज़र रखी और इस बात पर ज़ोर दिया कि ज़मीनी स्तर पर आ रहे वास्तविक नतीजों पर ध्यान दिया जाए।

उनके साथ काम करने के दौरान मुझे जो सबसे बड़ी सीख मिली, वह भारत के बुनियादी ढांचा क्षेत्रों की समीक्षाओं से मिली। नीति आयोग से हमेशा यह उम्मीद की जाती थी कि वह अपनी तैयारी पूरी रखे, अलग–अलग मंत्रालयों के प्रदर्शन की जांच करे और इन पर विस्तृत रुप से प्रस्तुति दे। प्रधानमंत्री हमेशा ध्यान से बात सुनते, जानकारी समझते और फिर आगे की कई बातों पर विचार करते थे। उनके सवाल सीधे मुद्दे की बात करते थे। वे जानना चाहते थे कि किसी प्रोजेक्ट में क्या रुकावट आ रही है, इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है, तुरंत क्या किया जा सकता है और भविष्य में या दूसरी जगहों पर ऐसी ही समस्या को कैसे रोका जा सकता है।

प्रगति प्लेटफार्म पर मुख्य सचिवों के साथ वर्चुअल समीक्षाओं और पीएम गति शक्ति के तहत एकीकृत, डेटा–आधारित अवसंरचनाओं के चलते, परियोजनाओं को तेज़ी से मंज़ूरी मिली, ज़मीन अधिग्रहण से जुड़े मसले सुलझाए गए और जोखिमों को असल संकट बनने से पहले ही पहचान लिया गया। उत्पादन संबंधी प्रोत्साहन (पीएलआई) योजना के साथ मिलकर, भारत ने इस गति को अपनी ढांचागत और विनिर्माण क्षमताओं के सक्रिय विस्तार में बदल दिया है।

इन वर्षों में, मुझे शायद किसी भी अन्य अधिकारी की तुलना में उनके सामने ज़्यादा प्रेजेंटेशन देने का सौभाग्य मिला है। हर बातचीत में, मैंने उनमें बौद्धिक गहराई, अनुशासन और जिज्ञासा का वही मेल देखा। मैंने कुछ ऐसा भी देखा, जिस पर कम ही चर्चा होती है। पीएम एक असाधारण श्रोता हैं। वे बिना किसी को चुप कराए पूरे माहौल पर अपनी छाप छोड़ सकते हैं। बैठकों में, वे अपनी बात रखने से पहले दूसरों के नज़रिए को समझते हैं। भारत के जी20 शेरपा के तौर पर अपने कार्यकाल के दौरान, मैंने उनमें देखी उस आदत को अपनाने की कोशिश की, यानी बैठक में अपनी बात कहने से पहले ज़्यादातर समय दूसरों की बात सुनना।

जब मैं नीति आयोग से जा रहा था, तो मैंने प्रधानमंत्री से मिलकर उनका आभार व्यक्त किया। इसके बजाय, उन्होंने मुझे भारत के जी20 शेरपा की ज़िम्मेदारी संभालने के लिए कहा, जिससे मुझे अपने करियर की सबसे चुनौतीपूर्ण ज़िम्मेदारी मिली। दुनिया चिंतित स्तर पर बंटी हुई थी, भू–राजनीतिक तनाव चरम पर था और आम सहमति बनना लगभग असंभव लग रहा था। फिर भी, उन्हें पूरा भरोसा था कि भारत देशों को एक साथ ला सकता है।

इसी भरोसे के साथ नई दिल्ली लीडर्स डिक्लेरेशन तैयार किया गया और सर्वसम्मति से पारित किया गया। बातचीत बहुत गहन और अक्सर थका देने वाली थी, लेकिन देर रात तक काम करने के बावजूद, हमने शीर्ष स्तर द्वारा पेश किए गए धैर्य और संयम का पालन करना जारी रखा। मैंने कभी भी प्रधानमंत्री को तेज़ आवाज़ में बात करते या अपना आपा खोते नहीं देखा, चाहे कितना भी भारी दबाव क्यों न हो। उनकी ताकत संयम में है और उनका आशावाद उनके साथ काम करने वालों को अपने सिद्धांतों पर अडिग रहने का साहस देता है।

प्रधानमंत्री मोदी के साथ काम करने से नेतृत्व के बारे में मेरी समझ पूरी तरह से विकसित हुई है। उनसे मैंने व्यापक दृष्टिकोण अपनाना, ध्यान से सुनना, दबाव में शांत रहना और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी प्रगति की संभावना पर भरोसा रखना सीखा है। मैंने यह भी सीखा है कि एक नेता को उस कल्पना को साकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए, जो अभी अस्तित्व में नहीं है और फिर उस कल्पना को साकार करने के लिए राज्य, प्रशासन और राष्ट्र की पूरी शक्ति लगानी चाहिए। उनके साथ मेरा जुड़ाव 150 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र पर हुई बातचीत से शुरू हुआ। यह जुड़ाव आधुनिक भारत के कुछ सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तनों के दौरान जारी रहा। हालांकि परियोजनाएं और मिशन बेहद महत्वपूर्ण हैं, फिर भी जो बात मेरे मन में सबसे ज्यादा गहराई से बसी है, वह है एक ऐसे नेता के साथ काम करने का अनुभव, जिनकी मूल महत्वाकांक्षा भारत को एक पूर्ण विकसित अर्थव्यवस्था में बदलना और सबसे ऊपर, प्रत्येक भारतीय के जीवन स्तर को बेहतर बनाना है।

(लेखक भारत के पूर्व जी20 शेरपा और नीति आयोग के सीईओ और औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग (डीआईपीपी) के पूर्व सचिव हैं।)

मध्यप्रदेश से घुसपैठियों को भारत में बसाने की साजिश

ग्वालियर और भोपाल में जो मामला सामने आया है, वह केवल फर्जी पासपोर्ट का मामला नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा में सेंध का मामला है। बांग्लादेशी घुसपैठियों को भारत में बसाने की साजिश के तहत एक पूरा रैकेट काम कर रहा था। खुलासा हो रहा है कि 25 से 30 हजार रुपये की रिश्वत देकर फर्जी दस्तावेज तैयार कराए जाते थे और फिर उसी फर्जी दस्तावेज के आधार पर भारतीय पासपोर्ट हासिल किया जाता था। यह पूरा मामला बताता है कि कैसे 25–30 हजार रुपये में भारतीय नागरिकता बेची जा रही है। फर्जी दस्तावेज, फर्जी सत्यापन और फर्जी पासपोर्ट—ये तीनों मिलकर एक ऐसे नागरिक को तैयार कर रहे हैं, जो कागज पर भारतीय है, लेकिन हकीकत में घुसपैठिया है। जरूरत है कि पूरे नेटवर्क को जड़ से खत्म किया जाए। केवल दलाल ही नहीं, बल्कि वह सरकारी अमला भी पकड़ा जाए, जो चंद हजार रुपये के लिए देश की सुरक्षा को दांव पर लगा देता है। क्योंकि आज सत्तर पासपोर्ट पकड़े गए हैं, कल सात सौ भी बन सकते हैं। तब यह मामला केवल भोपाल–ग्वालियर का नहीं, बल्कि पूरे देश की सुरक्षा का बन जाएगा।

एसटीएफ की गिरफ्त में आए आरोपियों से पूछताछ में पता चला है कि पांच जिलों—भोपाल, ग्वालियर, छिंदवाड़ा और बैतूल—से सत्तर बांग्लादेशियों के फर्जी पासपोर्ट बनवाने के लिए लगभग 17.50 लाख रुपये वसूले गए। यह आंकड़ा डराता है, क्योंकि यह केवल पकड़े गए लोगों का हिसाब है। सोचिए, जो पकड़े नहीं गए, उनकी संख्या कितनी होगी?

भोपाल में डोनेशन वसूला जाता था और हॉस्टल तैयार करवाया जा रहा था। जांच में यह भी सामने आया है कि रियाल नाम का व्यक्ति, जो खुद को सामाजिक कार्यकर्ता बताता था, बांग्लादेश से बच्चों को भोपाल लाकर पढ़ाने, जाली दस्तावेज तैयार करने और उन्हें थाईलैंड, म्यांमार, जापान तथा कंबोडिया भेजने की तैयारी में था। मठ के पीछे 40 बच्चों को लाने की तैयारी थी। भोपाल लाकर पढ़ाने के नाम पर डोनेशन वसूला जा रहा था। एसटीएफ की जांच में यह भी पता चला है कि बांग्लादेशी घुसपैठियों के लिए दस्तावेज बनवाने के बदले 10 से 15 हजार रुपये प्रति व्यक्ति वसूले गए। पुलिस सत्यापन और सरकारी मुहर लगवाने के नाम पर पांच हजार रुपये अलग से खर्च किए गए। यह पूरा खेल दलालों और सरकारी अमले की मिलीभगत से चल रहा था।

जांच में यह बात सामने आई है कि हर घुसपैठिए ने 25 से 30 हजार रुपये खर्च कर भारतीय पासपोर्ट हासिल किए। डबरा, ग्वालियर क्षेत्र में एक ही पते पर 17 बांग्लादेशियों के पासपोर्ट बनने की बात सामने आई है। हर सरकारी मुहर के लिए रिश्वत दी गई। यह रिश्वत की चेन नीचे से ऊपर तक जाती है। दलाल से लेकर सरकारी कर्मचारी और फिर पुलिस सत्यापन तक, हर जगह पैसे का लेन–देन हुआ। एसटीएफ ने भोपाल में रियाल के साथ रहने वाले सेवक सुभाष और विजय को हिरासत में लेकर पूछताछ शुरू कर दी है। मठ की भूमिका भी संदेह के दायरे में है। एसटीएफ इस पूरे नेटवर्क की गहराई से छानबीन कर रही है। सौ से ज्यादा लोगों से पूछताछ जारी है। पुलिस सत्यापन से जुड़े वर्ष 2021 और वर्ष 2022–23 में पदस्थ रहे 15 अधिकारियों की भूमिका भी संदेह के दायरे में है। इनमें स्थानीय मददगारों, नगर निगम, राजस्व विभाग, सरपंच, पार्षदों के साथ ही पुलिस के कुछ कर्मचारी भी शामिल हैं।

यह पूरा मामला बताता है कि कैसे 25–30 हजार रुपये में भारतीय नागरिकता बेची जा रही है। फर्जी दस्तावेज, फर्जी सत्यापन और फर्जी पासपोर्ट—ये तीनों मिलकर एक ऐसे नागरिक को तैयार कर रहे हैं, जो कागज पर भारतीय है, पर हकीकत में घुसपैठिया है। जरूरत है कि पूरे नेटवर्क को जड़ से खत्म किया जाए। केवल दलाल ही नहीं, बल्कि वह सरकारी अमला भी पकड़ा जाए, जो चंद हजार रुपये के लिए देश की सुरक्षा को दांव पर लगा देता है। क्योंकि आज सत्तर पासपोर्ट पकड़े गए हैं, कल सात सौ भी बन सकते हैं। तब यह मामला केवल भोपाल–ग्वालियर का नहीं, बल्कि पूरे देश की सुरक्षा का बन जाएगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

दस लाख में नागरिकता की बिक्री

मध्यप्रदेश की स्वास्थ्य व्यवस्था वेंटिलेटर पर : संसाधनों के साथ मैनपावर की भारी कमी

सरकार की स्वास्थ्य प्रणाली जीवन रक्षक प्रणाली होती है। अगर यही बीमार हो जाए तो फिर सरकार भी स्वस्थ नहीं मानी जाती। मृत्यु अटल है, लेकिन अगर यह स्वास्थ्य प्रणाली की नाकामी और लापरवाही के कारण आए तो फिर यह हत्या बन जाती है। मध्यप्रदेश की सरकारी स्वास्थ्य प्रणाली दुर्दिनों के चरम पर पहुंचती जा रही है। इस लापरवाही से लोग जब मरने लगे, इसकी अव्यवस्था और अराजकता जब लाशों को भी सुरक्षित नहीं रख पाई, जब नकली दवाओं का इतना बोलबाला हो कि खांसी का सिरप ही मौत का सल्फास बन जाए, जब विशेष पिछड़ी जनजाति बैगा के बड़ी संख्या में बच्चे मलेरिया और मीजल्स की बीमारी के कारण मर जाएं, तो यह व्यवस्था पर गंभीर सवाल खड़े करता है। यह ऐसी बीमारी है जिसका सुनिश्चित इलाज है।

मीजल्स की तो जन्म के साथ ही टीकाकरण की व्यवस्था है। इसका मतलब है कि आदिवासी इलाकों में टीकाकरण भी नहीं मिल पा रहा है। एमपी की स्वास्थ्य प्रणाली के कर्णधार अपने गृह जिले में भी सुधार नहीं ला पा रहे हैं। विपक्षी उनके खिलाफ प्रदर्शन और आंदोलन कर रहे हैं। ऐसे प्रदर्शन असफलता आंकने के लिए पैमाना नहीं हैं, लेकिन जिन मुद्दों पर प्रदर्शन हो रहे हैं, वे जरूर अक्षमता और असफलता स्थापित करते हैं। शुक्ल पक्ष चांदनी का प्रतीक है। प्रकाश का पक्ष है, वहीं कृष्ण पक्ष को अंधकार का पक्ष माना जाता है। अगर इस भाषा में देखा जाए तो एमपी की स्वास्थ्य प्रणाली अब तक कृष्ण पक्ष से बाहर नहीं आ पाई है। भले ही बात शुक्ल पक्ष की होती रहे, लेकिन वास्तविकता अंधकारपूर्ण ही दिखती है।

सबसे बड़ी चिंता की बात जवाबदेही का अभाव है। जब जहरीले सिरप के कारण बच्चे मरे थे, तब भी जांच और कार्रवाई की बातें हुई थीं, लेकिन सब लीपापोती में चला गया। अब जब बालाघाट में विशेष पिछड़ी जनजाति बैगा के बच्चे इलाज के अभाव में मौत के मुंह में समाए हैं, तब जांच और व्यवस्थाओं के सुधार की बातें हो रही हैं। वहां डॉक्टरों की पदस्थापना भी हो रही है। पक्ष–विपक्ष सभी दलों के लोग शायद मौतों के बाद ही जागते हैं। जिन जिलों में अब तक मौतें नहीं हुई हैं, क्या वहां स्वास्थ्य प्रणाली और सुविधाएं संतोषजनक हैं? डॉक्टरों का अभाव आदिवासी क्षेत्र तो क्या, राजधानी और बड़े शहरों में भी बना हुआ है। डॉक्टर प्राइवेट प्रैक्टिस में लगे हुए हैं। सिस्टम के कर्णधार डॉक्टरों को प्राइवेट प्रैक्टिस छोड़ने की कितनी भी चेतावनी दें, सब बेअसर होती हैं। जब प्राइवेट स्वास्थ्य सुविधा बहुत सीमित थी, तब भी मध्यप्रदेश में प्राइवेट प्रैक्टिस प्रतिबंधित करने का कदम उठाया गया था। कई विशेषज्ञों ने सरकारी सेवाएं छोड़ दी थीं। फिर सरकारें प्राइवेट प्रैक्टिस पर आंखें मूंद लेती हैं। स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार तो बहुत हुआ है। सरकारी क्षेत्र में भी विस्तार हुआ है और प्राइवेट में तो यह विस्तार बहुत तेज हुआ है। लगभग हर जिले में मेडिकल कॉलेज स्थापित हो गए हैं। मेडिकल की सीटें बढ़ गई हैं। फिर भी जूनियर डॉक्टरों को स्टाइपेंड के लिए आंदोलन करना पड़ता है। बिना आंदोलन के स्टाइपेंड में वृद्धि नहीं होना यही बताता है कि सरकारी सिस्टम पूरी तरह से गंभीर बीमारी से ग्रसित है। जब सड़कों पर जाम किया जाता है, तब ही उनकी नींद खुलती है। अब लोगों ने भी इस रास्ते पर चलने का शायद संकल्प कर लिया है।

नकली दवाओं का तो जैसे जाल बिछा हुआ है। सरकारी अस्पतालों में दवाओं की खरीदी का सिस्टम भ्रष्टाचार की गिरफ्त में है। गंभीर बीमारियों की जीवन रक्षक दवाइयां भी नकली व्यापार की जद में हैं। सरकारी और निजी स्वास्थ्य प्रणाली की सांठगांठ पूरी व्यवस्था को लूट की व्यवस्था बनाने में लगी हुई है।

आयुष्मान योजना आने के बाद सरकारी और प्राइवेट अस्पतालों में बहुत ज्यादा भेद बचा नहीं है। गरीबों को आयुष्मान कार्ड पर प्राइवेट अस्पताल में भी मुफ्त इलाज की सुविधा उपलब्ध होती है। इसके दुरुपयोग की भी खबरें आती हैं। अस्पतालों को प्रतिबंधित किया जाता है, लेकिन फिर भी यह सब चलता रहता है। आयुष्मान के इलाज का पूरा नियंत्रण सरकारी सिस्टम के पास है, लेकिन फिर भी इसमें इतने घोटाले बिना सरकारी भागीदारी के संभव नहीं हो सकते हैं। पेपर लीक और प्रवेश घोटाले तो चल ही रहे हैं, अब तो सरकारी व्यवस्था में कोई ऐसा तंत्र दिखाई नहीं पड़ता, जहां भ्रष्टाचार न हो। बिना रिश्वत के कोई भी काम करना लगभग असंभव हो गया है। निजी क्षेत्र के डॉक्टर जितनी कमाई करते हैं, वह सरकारी डॉक्टरों में ईर्ष्या पैदा करती है। सरकारी पद में जॉब गारंटी होती है, शायद इसलिए ही डॉक्टर सरकारी अस्पतालों में ज्वाइन करते हैं।

डॉक्टरों के ट्रांसफर स्वास्थ्य प्रणाली के कर्णधारों की कमाई का बड़ा जरिया होते हैं। तबादलों के सीजन में केवल लिस्ट में नाम होने के प्रचार पर ही लाखों रुपये इकट्ठे कर लिए जाते हैं। महंगा इलाज अपने आप में लोगों की जीवन रक्षा में बड़ी बाधा है। सुविधाओं का विस्तार तो हुआ है, लेकिन उसकी गुणवत्ता पर अभी भी कई सवाल हैं। सरकारी स्वास्थ्य प्रणाली की विश्वसनीयता नीति–निर्माताओं में नहीं बची है। बैगा आदिवासी बच्चों की मौत का मामला हाई कोर्ट पहुंच गया है। सरकारें बदलने और मंत्री बदलने से भी व्यवस्था नहीं बदलती। यह तो अब प्रमाणित हो चुका है। व्यवस्था बदलने के लिए क्या करना पड़ेगा, यह शायद किसी को पता नहीं है। या ऐसी व्यवस्था सबके लिए लाभ की भागीदारी सुनिश्चित करती है। जब कृष्ण पक्ष का अंधेरा होता है तो थोड़ा प्रकाश भी उजाला जैसा दिखता है। सिस्टम की खामियां और अक्षमताएं कई बार कर्णधारों पर भारी पड़ जाती हैं। इसी मध्यप्रदेश में एक पावरफुल स्वास्थ्य मंत्री के पावरफुल प्राइवेट सेक्रेटरी ने सरकारी अस्पताल में ही अचानक दम तोड़ दिया था।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)